जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

ध्यान के लिए एकान्त चाहिए, भीड़ नहीं।

- बिन्दु में सिंधु, पृष्ठ-37

वर्ष : 25, अंक : 21 | **सम्पादक :** पण्डित रतनचन्द भारिल्ल | आजीवन शुल्क : 251 रुपये
फरवरी (प्रथम) 2003 | **प्रबन्ध सम्पादक :** पण्डित संजीवकुमार गोधा | वार्षिक शुल्क : 25/-, एकप्रति : 2/-

पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव सम्पन्न

ग्वालियर : यहाँ श्री आदिनाथ दिगम्बर जिनबिम्ब पञ्चकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव समिति श्री त्रिभुवन तिलक सीमन्धर जिनालय फालका बाजार, ग्वालियर द्वारा दिनांक 13 जनवरी से 19 जनवरी 2003 तक श्री 1008 भगवान आदिनाथ दिग. जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव का आयोजन किया गया।

इस अवसर पर विदेहक्षेत्र में विद्यमान 1008 श्री सीमन्धर भगवान की श्वेत धवल पाषाण की 4 फुट ऊँची पद्मासन मनोहारी प्रतिमा को स्वर्णजड़ित भव्य वेदी पर गजरथ महोत्सवपूर्वक विराजमान किया गया।

महोत्सव की सम्पूर्ण प्रतिष्ठा विधि बाल ब्र. जतीशचन्दजी शास्त्री सनावद के निर्देशन में सहयोगी प्रतिष्ठाचार्य पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री छिंदवाड़ा, पण्डित शान्तिकुमारजी पाटील जयपुर, पं. ऋषभकुमारजी शास्त्री छिन्दवाड़ा, पं. सुकुमालजी झांझरी उज्जैन, पं. मनीषकुमारजी शास्त्री पिड़ावा, पं. सुबोधजी शास्त्री शाहगढ़, पं. संदीपजी शास्त्री छतरपुर एवं पं. अनिलजी 'धवल' भोपाल द्वारा सम्पन्न करायी गई।

सभी कार्यक्रम ब्र. अभिनन्दनकुमारजी शास्त्री खनियांधाना के कुशल निर्देशन में सम्पन्न हुये ।

इस मंगलमय प्रसंग पर अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त विद्वान डॉ. हुकचन्दजी भारिल्ल, पण्डित विमलचन्दजी झांझरी उज्जैन, पण्डित कैलाशचन्दजी 'अचल', पण्डित प्रदीपकुमारजी झांझरी उज्जैन तथा पण्डित प्रकाशचन्दजी झांझरी उज्जैन के सारगर्भित प्रवचनों का लाभ समाज को प्राप्त हुआ।

प्रथम दिन एडवोकेट आर. डी. जैन एवं अजितकुमार जैन सर्राफ परिवार ग्वालियर द्वारा झण्डारोहण कर महोत्सव का शुभारम्भ किया गया।

इस अवसर पर सीमंधर संगीत सरिता छिन्दवाड़ा व टोडरमल संगीत सरिता जयपुर ने आध्यात्मिक भक्ति गीतों के माध्यम से भक्ति रस का आस्वादन कराया।

महारानी मरुदेवी और महाराजा नाभिराय बनने का सौभाग्य श्रीमती शांती देवी जैन व श्री महेन्द्रकुमार जैन को प्राप्त हुआ। यज्ञनायक श्री सुमतचन्द्र जैन एवं श्रीमती महेन्द्री जैन, सौधर्म इन्द्र-इन्द्राणी श्री प्रकाशचन्द जैन व श्रीमती सुलोचना जैन, कुबेर श्री विजयकुमार जैन व श्रीमती नीलम जैन बने। इनके अतिरिक्त भी अनेक महानुभावों ने इन्द्र-इन्द्राणी व राजा-रानी बनकर तथा भगवान के जिनबिम्ब भेंटकर्त्ता व विराजमान कर्त्ता बनकर सहयोग प्रदान किया।

सम्पूर्ण कार्यक्रम में उज्जैन, ग्वालियर, खनियांधाना आदि फैडरेशन शाखाओं तथा स्थानीय श्री दिग. जैन महावीर परमागम मन्दिर न्यास, श्री दिग. जैन वासुपूज्य सेवा समिति, श्री जैन मिलन आदि अनेक संस्थाओं का सहयोग अत्यंत सराहनीय रहा।

इस अवसर पर जन्मकल्याणक के दिन मैनपुरी का प्रकाशमान मणियों का पालना (झूला) एवं श्री डी. पी. कौशिक द्वारा तथा उज्जैन फैडरेशन द्वारा प्रस्तुत 'श्री राम का वैराग्य' व 'समता का सौन्दर्य' नाटकद्वय विशेष आकर्षण का केन्द्र रहें।

समस्त प्रासंगिक गीत- नृत्य शास्त्रीय संगीत पर आधारित ब्र. समताबेन एवं ज्ञानधाराबेन उज्जैन के निर्देशन में सम्पन्न हुए।

इस अवसर पर लगभग 45 हजार रुपयों का सत्साहित्य तथा डॉ. भारिल्ल के प्रवचनों की 675 घण्टों की सी. डी. व ऑडियो कैसिटें बिकीं।

ह्न अजित जैन 'अचल'

नेमिचंदजी पाटनी के निधन से गहन शोक

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामंत्री पण्डित नेमिचंदजी पाटनी का दिनांक 20 जनवरी को सायं 4 बजे देहली में हृदय गति रुकने से देहावसान हो गया है। आप 91 वर्ष के थे। ज्ञातव्य है कि ब्रेनहेमरेज होने के कारण पाटनी जी सेमी कोमा की स्थिति में पहुँच गये थे। उपचार के बाद पाटनी जी के स्वास्थ्य में तेजी से सुधार हुआ। चेतना में आते ही उन्हें और कुछ व्यापार,पत्नी,पुत्र आदि परिवार की याद नहीं आई, मात्र अपनी अधूरी किताब 'क्रमबद्धपर्याय की श्रद्धा में पुरुषार्थ' पूरा करने का विकल्प आया और उनने उसका सारांश भी बोलकर लिखवाया; परन्तु नियति के आगे किसका बस चला? अचानक सोडियम की कमी से हृदयघात होने से वे हम सबको छोड़कर अचानक चले गये।

उनके निधन का समाचार प्राप्त होते ही गाँव-गाँव से संवेदना समाचार आने लगे। लोग क्यों? कैसे? जानने को उतावले थे।

दिनांक 21 जनवरी 03 को आगरा में उनका अंतिम संस्कार किया गया। टोडरमल स्मारक भवन में भी 23 जनवरी को बारह भावना का पाठ एवं 31जनवरी को सायं जयपुर की अनेक संस्थाओं द्वारा विशाल शोक सभा करके उनके प्रति हार्दिक श्रद्धांजली दी गयी।

विशेष आलेख....

पण्डित श्री नेमीचन्दजी पाटनी का निधन : अपूरणीय क्षति

ऐसे व्यक्ति तो बहुत मिल जायेंगे, जो पारिवारिक उत्तरदायित्वों से मुक्त होने पर, बच्चों के द्वारा व्यवसाय-उद्योग-धंधा संभाल लेने पर, सब तरह से पारिवारिक व आर्थिक अनुकूलता होने पर, अपने जीवन के उत्तरार्द्ध में धर्म एवं समाजसेवा में लग जाते हैं।

ऐसे व्यक्तियों की भी कमी नहीं है, जो आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न होने पर समाज में यश-प्रतिष्ठा प्राप्त करने का लोभ संवरण नहीं कर पाते। ऐसे लोग समाज में अपनी नेतागिरी चलाने के लिए धार्मिक कार्यक्रमों के माध्यम से समाज में अपना स्थान बनाने की सोचते हैं, सामाजिक व धार्मिक कार्यों में सक्रिय हो जाते हैं। ऐसे लोग धर्म को केवल अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करने का साधन बनाते हैं, उन्हें आत्कल्याण में कोई खास प्रयोजन नहीं रहता।

ऐसे व्यक्ति भी बहुत मिल जायेंगे, जिन्हें घर-परिवार से उपेक्षा मिलने के कारण अथवा किसी राज-रोग से घिर जाने के कारण या बुढ़ापे के कारण संसार व शरीर असार-सा लगने लगता है और धर्म-कर्म करने की सोचने लगते हैं।

परन्तु श्री नेमीचन्दजी पाटनी इन सब के अपवाद थे। पाटनीजी ऐसे व्यक्तियों में नहीं थे, जिन्होंने धर्म-साधना एवं आत्मआराधना को बुढ़ापे की वस्तु माना हो।

आपका परिवार धार्मिक होने के कारण धर्म के संस्कार तो उनमें जन्मजात थे ही, पर पूज्य श्री कानजी स्वामी का सान्निध्य पाकर तो आपका जीवन ही बदल गया। स्वामीजी के द्वारा प्रतिपादित अध्यात्म को सुनकर आप अत्यधिक प्रभावित हुए और आपको ऐसा लगा कि यह बात तो जन-जन तक पहुँचाने जैसी है।

आपने 35-36 वर्ष की भरी जवानी में ही व्यावसायिक कार्यों की व्यस्तता के बीच में से ही समय निकालकर तत्त्व प्रचार-प्रसार की गतिविधियों का सु-समायोजन किया। साथ ही स्वयं स्वाध्याय भी ऐसा किया कि वे स्वयं भी एक अच्छे प्रवचनकार विद्वान बन गए।

घर में अग्रज होने के कारण यद्यपि प्रारंभ में व्यवसाय का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व और जिम्मेदारी आप पर रही है, फिर भी आपके स्वाध्याय व तत्त्वप्रचार-प्रसार व धार्मिक गतिविधियों में जरा भी शिथिलता नहीं आयी। पूर्ण नि:स्वार्थ भाव से एवं सम्पूर्ण समर्पण के साथ आप आजीवन जिनवाणी के प्रचार तथा धर्म में समर्पित रहे। पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जैसी संस्था और खानिया तत्त्वचर्चा, सुखी होने का उपाय (1-8) जैसी कृतियाँ उसी श्रम का फल हैं।

जिन्होंने श्री पाटनीजी को निकट से देखा है, उसके अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व को जाना-पहचाना है, वे उनके व्यक्तित्व से भलीभांति परिचित हैं। मैं भी उन्हीं में से एक हूँ; जिसने श्री पाटनीजी को लगभग विगत 40 वर्षों से अत्यन्त निकट से देखा-परखा है, उनके अन्तर्बाह्य व्यक्तित्व को जाना-पहचाना है।

विगत 25 वर्षों से, जब से मैं जैनपथप्रदर्शक एवं श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय से जुड़ा हूँ, तब से तो मैं उनके अत्यधिक निकट सम्पर्क में हूँ ही, इसके पूर्व भी पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी द्वारा प्रतिपादित जिनागम के सूक्ष्मतम सिद्धान्तों में तथा पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा संचालित वीतराग-विज्ञान के प्रचार-प्रसार की शैक्षणिक गतिविधियों में मेरी अभिरुचि होने से मेरा उनसे निकट सम्पर्क रहा है।

श्री पाटनीजी केवल तत्त्वप्रचार-प्रसार के प्रयोजन से ही अनेक संस्थाओं से जुड़े; जिनमें पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट जयपुर, श्री कुन्दकुन्द कहान दि. जैन तीर्थ सुरक्षा ट्रस्ट मुम्बई, दि. जैन स्वाध्याय मंदिर ट्रस्ट सोनगढ़, रवीन्द्र पाटनी चैरिटेबल ट्रस्ट मुम्बई, के.डी. दि. जैन हाय सैकेण्डरी स्कूल, किशनगढ़ आदि संस्थाएँ प्रमुख हैं।

इनके सिवाय गुरुदेवश्री के सान्निध्य में तीन-तीन तीर्थयात्रा संघों का सफल संचालन, अनेक पंचकल्याणक प्रतिष्ठाओं, वेदी प्रतिष्ठाओं और जिनमन्दिरों के निर्माण कार्य का कुशल निर्देशन भी आपके कीर्तिमान हैं।

आपको कार्यकर्ताओं को पहचानने की पैनी दृष्टि सहज प्राप्त थी। कार्यकर्ताओं से काम लेना भी आपको भलीभांति आता था। अच्छे कार्यकर्ताओं को जोड़े रहना आपकी अपनी विशेषता रही। दुधारी गाय के सींगों की मार भी कभी-कभी सहनी पड़ती है, इस नीति से वे सुपरिचित थे। अत: अच्छे कार्यकर्ताओं को व्यक्तिगत रोष का कारण बनने पर भी कभी नहीं छोड़ते और उन्हें समय-समय पर प्रोत्साहित करना, यथायोग्य आदर देना, उनकी सुख-सुविधाओं का पूरा ध्यान रखना, दु:ख-दर्द में साथ देना आदि कुछ ऐसी विशेषतायें हैं, जिनसे कार्यकर्ता उनसे सदैव जुड़े रहे। ये सब बातें पाटनीजी की जीवन-शैली में सहज उपलब्ध थीं।

यद्यपि वे लेखक नहीं थे, भाषा के पण्डित भी नहीं थे। पर अपने ज्ञानोपयोग का सदुपयोग करने के लिए वे समय-समय पर स्वाध्याय के आधार से हुए अपने धार्मिक अध्ययन व चिन्तन-मनन को जीवन के अन्ततक लिपिबद्ध करते रहे हैं, सुखी होने का उपाय पुस्तक तो आठ भागों में प्रकाशित हो चुकी है।

पाटनीजी को केवल पद के लिए उत्तराधिकारी बनना बिल्कुल पंसद नहीं था। वे जिस पद को स्वीकार करते थे। सम्पूर्ण समर्पण व उत्तरदायित्व के साथ उसका निर्वाह करते थे। कोई सोच भी नहीं सकता कि किसी संस्था का महामंत्री महीने में 15-20 दिन बाहर गाँव से (आगरा से जयपुर)आकर और प्रतिदिन 6-6 घंटे कार्यालय में बैठकर एक बाबू की भांति काम करता होगा और उसकी छत्रछाया में बैठकर अधीनस्थ कर्मचारी पूर्ण नि:संकोच भाव से, बिना किसी औपचारिकता के, बे-झिझक अपना-अपना काम करते होंगे। पर, पाटनीजी एकमात्र ऐसे महामंत्री थे, जिन पर महामंत्री जैसे गरिमामय पद के बड़प्पन का भूत कभी सवार नहीं हुआ।

महाविद्यालय के अनुशासन के संदर्भ में उन्होंने मुझसे अनेक बार यह कहा कि कठोर से कठोर कार्यवाही करने से आप मेरे नाम का उपयोग कर सकते हैं। बुरा बनने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है। व्यवस्था में भलाई-बुराई को तो गौण करना ही पड़ता है।

पाटनीजी की एक बड़ी विशेषता यह रही है कि उन्हें कोई किसी के विषय में उल्टी-सीधी पट्टी नहीं पढ़ा सकता था। वे प्रत्येक बात की तह में पहुँचकर ही निर्णय लेते थे। उनमें एक अच्छे प्रशासक के सभी गुण विद्यमान थे।

अन्तिम दिनों में उन्होंने सभी सामाजिक व धार्मिक प्रचार-प्रसार की गतिविधियों से भी संन्यास लेकर आत्माभिमुख होने का संकल्प कर लिया था। निश्चित ही उनकी सद्गति हुई है। वे अल्पकाल में परमपद को प्राप्त करें, बस मेरी उनके प्रति यही मंगल भावना और विनम्र श्रद्धांजलि है।

ॐ शान्ति ! शान्ति !! शान्ति !!!

ह्न रतनचन्द भारिल्ल

सम्पादकीय –

हरिवंशपुराण : एक अनुशीलन

23

– रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे .....)

इसप्रकार केवलज्ञानी सुप्रतिष्ठित प्रभु ने दिव्यवाणी द्वारा धर्मोपदेश देते हुए धर्म को उत्कृष्ट मंगलस्वरूप प्रतिपादित किया। तथा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान सहित चारित्र के रूप में अहिंसा, संयम, तप आदि का उपदेश दिया। उन्होनें कहा – हमने अनन्तबार निगोद में जा-जाकर एक इन्द्रिय (मात्र स्पर्शन इन्द्रिय) पर्याय में जन्म लिया और एक स्वांस में अठारह-अठारह बार जन्म-मरण धारण किया। यह मनुष्य पर्याय अत्यन्त दुर्लभता से प्राप्त हुई है। इसे भोगों में पड़कर पापार्जन करके पुनः संसार चक्र में फँसने का काम मत करो।

ये कुयोनियाँ नित्यनिगोद, इतरनिगोद, पृथ्वीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक और वायुकायिक जीवों में प्रत्येक-प्रत्येक की सात-सात लाख होती हैं। वनस्पति कायिकों की दश लाख, विकलेन्द्रियों की छह लाख, मनुष्यों की चौदह लाख, तिर्यंच, नारकी एवं देवों की ह्न प्रत्येक की चार-चार लाख ह्न इसप्रकार चौरासी लाख योनियाँ हैं; जिनमें अज्ञानी जीव अनन्त काल तक जन्म-मरण करते रहते हैं।

इसप्रकार यह असार संसार अनेक दुःखों से भरा है। इन सबमें मात्र मनुष्य पर्याय ही मोक्ष का साधक होने से सारभूत है; परन्तु यह अत्यन्त दुर्लभ है, जो हमें हमारे सद्भाग्य से सहज में उपलब्ध हो गई है; अतः बुद्धिमान व्यक्तियों को इस संसार की दुःखद स्थिति को जानकर इससे विरक्त होकर मुक्ति की साधना कर इस मानवजन्म को सार्थक कर लेना चाहिए।

अफसोस तो यह है कि जिस लौकिक आजीविका के लिए, भौतिक सुविधा के लिए हमें एक क्षण बर्बाद करने की जरूरत नहीं है; क्योंकि वह सब तो पूर्वोपार्जित पुण्यानुसार हाथी को मन और चींटी को कन मिलता ही है और जिस मुक्ति की साधना के लिए अपूर्व पुरुषार्थ की जरूरत है, उसके लिए हम समय नहीं दे पा रहे हैं; अतः अपनी दिशा को बदलना चाहिए। दिशा बदलने से ही दशा बदलेगी।

इसप्रकार केवली भगवान की दिव्यध्वनि के सार को सुनकर एवं नमस्कार कर अन्धकवृष्णि के मन को अपने पूर्वभव जानने की जिज्ञासा सर्वज्ञ सुप्रतिष्ठित केवली की दिव्यध्वनि द्वारा उनकी जिज्ञासा का समाधान इसप्रकार प्राप्त हुआ।

भगवान ऋषभदेव के तीर्थकाल में अयोध्यानगरी में राजा रत्नवीर्य राज्य करता था। उसके निष्कंटक राज्य में बत्तीस करोड़ दीनारों (तत्कालीन सिक्कों) का धनी सुरेन्द्रदत्त सेठ था। सुरेन्द्रदत्त सेठ जिनधर्म का परम श्रद्धावान था। रुद्रदत्त उसका मित्र था। एकबार सेठ धार्मिक अनुष्ठान कराने के लिए रुद्रदत्त को विपुल धनराशि देकर व्यापार के लिए बाहर गया था। रुद्रदत्त के मन में बेईमानी आ गई। उसने उस धार्मिक अनुष्ठान हेतु प्राप्त सेठ के धन को धर्म के अनुष्ठान में न लगाकर जुआ, वैश्याव्यसन आदि कुकर्मों में बर्बाद कर दिया। जब धन नष्ट हो गया और बुरे व्यसनों में फँस गया तो चोरी आदि गलत उपायों से धन जुटाने के अपराध करने लगा। उन असफल प्रयासों में वह पकड़ा गया। जब जेल से छूटा तो वन में भीलों के साथ रहकर लोगों को लूटने लगा। अन्त में सैनिकों से मारा गया और संक्लेश परिणामों से मरकर सातवें नरक गया।

मन्दिर का चढ़ाया हुआ निर्माल्य द्रव्य हड़पने और सात व्यसनों के सेवन के परिणाम स्वरूप वह तैंतीस सागर तक सातवें नरक के भयंकर दुःख भोगकर वहाँ से निकला, फिर संसार में परिभ्रमण करता हुआ ह्न कदाचित् पापकर्म के उपशम से हस्तिनापुर में गौतम नामक महादरिद्र मनुष्य हुआ। इधर-उधर भिक्षावृत्ति करके पेट-पालते हुए उसे समुद्रदत्त नामक मुनिराज के दर्शन हो गये। वह उनके चरणों में वन्दना कर बैठ गया और अपने दुःखों को कहकर उनसे मुक्त होने का उपाय पूछने लगा।

समुद्रदत्त मुनिराज ने उसे भव्य जानकर जिनधर्म का उपदेश दिया और अपने पास रख लिया। जब वह तत्त्वज्ञानी हो गया तो उस गौतम को मुनिधर्म की दीक्षा दे दी। तत्पश्चात् गौतममुनि एक हजार वर्ष की कठिन तपस्या के प्रभाव से बीजबुद्धि तथा रसऋद्धि से युक्त हो गये और अक्षीणमहानस एवं पदानुसारिणी ऋद्धि भी प्राप्त कर ली।

गुरु समुद्रदत्त मुनि अच्छी तरह आराधनाओं की आराधना कर छठे ग्रैवेयक के सुविशाल नामक विमान में अहमिन्द्र हुए और उनके शिष्य गौतम मुनि ने पचास हजार वर्ष तप किया। अन्त में विशाल बुद्धि के धारक गौतम मुनि भी अट्ठाईस सागर की आयु प्राप्त कर उसी सुविशाल-विमान में उत्पन्न हुए। वहाँ से चलकर गौतम का जीव तो अन्धकवृष्णि हुआ और मुनि समुद्रदत्त का जीव मैं सुप्रतिष्ठित हुआ हूँ।

तत्पश्चात् अन्धकवृष्णि के मन में अपनी पत्नी सुभद्रा तथा अपने वसुदेव आदि दश पुत्रों और कुन्ती-माद्री पुत्रियों के पूर्वभव जानने की जिज्ञासा हुई। उसका भी संक्षिप्त समाधान दिव्यध्वनि में इसप्रकार हुआ। **(क्रमशः)**

आत्मानुभूति-प्राप्ति के लिए सन्नद्ध पुरुष प्रथम तो श्रुतज्ञान के अवलम्बन से आत्मा का विकल्पात्मक सम्यक् निर्णय करता है। तत्पश्चात् आत्मा की प्रकट- प्रसिद्धि के लिए, पर-प्रसिद्धि की कारणभूत इन्द्रियों से मतिज्ञानतत्त्व को समेटकर आत्माभिमुख करता है तथा अनेक प्रकार के पक्षों का अवलम्बन करने वाले विकल्पों से आकुलता उत्पन्न करने वाली श्रुतज्ञान की बुद्धि को भी गौण कर उसे भी आत्माभिमुख करता हुआ विकल्पानुभवों को पार कर स्वानुभव दशा को प्राप्त हो जाता है।

चिंतन की गहराइयाँ पृष्ठ –15

कहान-संदेश

धर्मी की मंगल भावना

6

अनादि से इस जीव ने अज्ञान दशा के कारण मैं स्वयं ज्ञानानन्दस्वभावी भगवान आत्मा हूँ - ऐसी दृष्टि नहीं की,अपनी प्रभुता पर कभी विश्वास नहीं किया तथा वर्तमान वर्तती पामर दशा के समय भी मैं शक्तिरूप से परिपूर्ण परमात्मतत्त्व हूँ - ऐसा उसे भासित नहीं हुआ; इसलिए उसे पौद्गलिक कर्म जिसका निमित्त - ऐसे मोह के अनुभव की ही अनादि से प्रबलता रही है।

प्रत्येक पदार्थ की पर्याय क्रमबद्ध होती है। जीव या जड़ की पर्याय का जो जन्मक्षण है, उसीसमय वह पर्याय क्रमबद्ध होती है। उसे पलटने में इन्द्र, नरेन्द्र या जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं हैं। यहाँ अकर्तृत्त्व की उत्कृष्टता बतलाते हैं। एक द्रव्य अन्य द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता है।

कोई भी द्रव्य क्रमबद्धरूप से होने वाली अपनी पर्याय को इधर-उधर कर सके - ऐसा भी नहीं है। जिस समय जो पर्याय होना है, वह होगी ही, उसे अन्य निमित्त की अपेक्षा तो है ही नहीं; अपितु अपने द्रव्य की भी अपेक्षा नहीं है।

परद्रव्य और आत्मा के बीच में अत्यन्त अभाव होने से विकार का आत्मा में प्रवेश ही नहीं है। चैतन्य का पिण्ड आत्मा तो विकार से भिन्न अकेला ही पड़ा है। जिसप्रकार तेल पानी के प्रवाह में ऊपर-ऊपर ही तैरता है, पानी की गहराई में प्रवेश नहीं करता है; उसीप्रकार विकार चैतन्य के प्रवाह में ऊपर-ऊपर ही तैरता है, चैतन्य की गहराई में प्रविष्ट ही नहीं होता।

सचमुच एक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं है; इसलिये दोनों के प्रदेश भिन्न हैं। शरीरादि परद्रव्य तो आत्मा से प्रत्यक्ष भिन्न ही हैं; किन्तु मिथ्यात्व तथा राग-द्वेष के परिणाम भी आत्मा से भिन्न ही हैं। पुण्य-पाप के भाव आत्मा के भाव से भिन्न हैं तथा प्रदेश से भी भिन्न हैं।

राग जीव की ही पर्याय में होता है; लेकिन वह तो जीव वस्तु का क्षणिक विभाव है; इसलिए ध्रुवद्रव्य आत्मा और क्षणिक विभाव रागादि पर्याय के बीच तद्-अभावस्वरूप अन्यत्व है। रागादि विभाव तो भिन्न हैं ही; किन्तु सम्यग्दर्शनादि निर्मल पर्यायें भी त्रैकालिक ध्रुव से अतद्-भावस्वरूप से भिन्न है; क्योंकि एक समय की निर्मल पर्याय में पूर्ण ध्रुवतत्व नहीं आता अर्थात् ध्रुवतत्व वर्तमान पर्याय जितना नहीं हो जाता। ध्रुव में जितना भावसामर्थ्य है, उतना श्रद्धान में आता है; मूल ध्रुववस्तु क्षणिक पर्यायरूप नहीं हो जाती। वस्तु का ध्रुवअंश और पलटता अंश संज्ञा-लक्षण-प्रयोजन की अपेक्षा भिन्न है।

तीनों कालों और तीनों लोक में शुद्धनिश्यनय से मात्र ज्ञानरस एवं आनन्दकन्द स्वरूप प्रभु मैं हूँ - ऐसा जो जानता है, उसकी दृष्टि सच्ची है, उसका ज्ञान सच्चा है और उसका चारित्र भी सम्यक् है; इसलिए ऐसी भावना निरन्तर करने योग्य है और यही करने योग्य कर्तव्य भी है। इसके सिवा दूसरा कुछ करने योग्य माने, वह आत्मा का अनादर है।

हे आत्मन् ! तू तो राग से भिन्न चैतन्य चमत्कार मात्र है, उसे जानता - मानता नहीं और रागादि को अपनी चीज मानता है - इस प्रकार की राग में सुखबुद्धि के कारण चैतन्य प्रभु आत्मा ढक गया है। राग के विकल्प में सुख है, आनन्द है - ऐसा मानने वाले का स्वभावभाव लोप हो गया है। अन्य प्रकार से कहा जाय तो राग अजीव है, उस अजीवभाव में रुक जाने से उसका जीवभाव विलुप्त हो गया है। जो राग को देखता है, वह अजीव को देखता है - अचेतन को देखता है। राग चैतन्यरूपी सूर्य की किरण नहीं है; राग को अचेतन कहकर पुद्गल कहा है। श्रवण करने का राग भी पुद्गल है, वह चैतन्यस्वभाव से विपरीत भाव है तथा निर्मल पर्याय का आश्रय भी पर द्रव्य ही है; अत: उसका लक्ष्य भी करने योग्य नहीं है।

शंका - पर की पर्याय को परद्रव्य कहो; किन्तु स्व की निर्मल पर्याय को परद्रव्य क्यों कहते हो?

समाधान- परद्रव्य के लक्ष्य से होने वाले राग की भाँति निर्मल पर्याय के लक्ष्य से भी राग उत्पन्न होने से, वह भी वास्तव में परद्रव्य है। वह द्रव्य से सर्वथा भिन्न है - ऐसा जोर दिये बिना दृष्टि का जोर द्रव्य पर नहीं जाता; इसलिए निर्मल पर्याय को भी परद्रव्य, परभाव तथा हेय कहा है। जिसे पर्याय से प्रेम है, उसका लक्ष्य परद्रव्य के ऊपर जाता है; इसलिए उसे परद्रव्य का ही प्रेम है। परम सत्स्वभाव रूप द्रव्य सामान्य के ऊपर लक्ष्य जाना वह अलौकिक बात है।

वास्तव में तो विकारी पर्याय पर्याय के कारण से होती है और अविकारी संवर, निर्जरा एवं मोक्ष पर्याय भी पर्याय के कारण से ही होती है। जीव उनका मात्र ज्ञाता-दृष्टा है। मोक्षमार्ग के कारण मोक्ष होता है - ऐसा कहना भी व्यवहार है; क्योंकि मोक्षपर्याय स्वयं पर्यायगत योग्यता से होती है।

ज्ञायकस्वभाव लक्ष्य में आने पर क्रमबद्ध यथार्थपने समझ में आता है। जो जीव पात्र होकर अपने आत्महित के लिए ही इसे समझना चाहता है, उसे ही यह बात समझ में आ सकती है। जिसे ज्ञायक की श्रद्धा नहीं है, सर्वज्ञ की प्रतीति नहीं है, अंतर में वैराग्य जागृत नहीं हुआ और कषायों की मंदता भी नहीं है - ऐसा जीव तो ज्ञायकस्वभाव के निर्णय का पुरूषार्थ छोड़कर क्रमबद्ध के नाम से स्वच्छन्दता का पोषण करता है; किन्तु जो जीव क्रमबद्ध पर्याय को यथार्थरूप से समझता हो, वह स्वच्छन्द नहीं होता। क्रमबद्ध को यथार्थ समझे वह तो ज्ञायक हो जाता है, उसके कर्तृत्व के उफान शांत हो जाते हैं और परद्रव्य का तथा राग का अकर्ता होकर ज्ञायक में एकाग्र हो जाता है।

तीर्थदर्शन –

पनिहार–बरई : ग्वालियर–शिवपुरी रोड पर ग्वालियर से 22 कि. मी. दूर सड़क के बाईं ओर पनिहार एवं दाईं ओर बरई गांव है। पनिहार रेल्वेस्टेशन भी है तथा स्टेशन से पनिहार 2 कि. मी. दूर है। इस गांव के बाहर ही जिनालय और भोंयरा है। सड़क से लगभग 3 कि. मी. दूर वरई गांव का टीला हैं। इस टीले पर जैनमंदिर है, जो कि भग्नप्राय है। मंदिर में कई बड़ी–बड़ी मूर्तियाँ हैं। एक तीर्थंकर की मूर्ति लगभग साढ़े पांच मीटर ऊँची है। कोई व्यवस्था न होने के कारण अनेक मूर्तियों के सिर काट लिये गये हैं।

शिवपुरी : पनिहार से शिवपुरी 96 कि. मी. दूर है। यहाँ राजकीय संग्रहालय, दर्शनीय जिनालय एवं जैन सामग्री विपुल मात्रा में संग्रहित है।

खानियांधाना : यह शिवपुरी से 102 कि. मी. दूर है। मध्यरेल्वे के बसई स्टेशन से 37 कि. मी. और चंदेरी से 53 कि. मी. है। यहाँ दो प्राचीन मंदिर हैं, जिनमें एक भग्नप्राय है। यहाँ एक मानस्तंभ तथा अनेक अभिलेख भी हैं। यहाँ की उपलब्ध सामग्री जैनधर्म और जैन कला की समृद्धी की द्योतक है। अधिकांश सामग्री 12 वीं, 14 वीं शताब्दी की है।

गूडर–गोलाकोट : खानियांधाना से गूडर 8 कि. मी. दूर है। यहाँ भग्नावशेष, मानस्तंभ तथा कुछ मूर्तियाँ हैं। गूडर से गोलाकोट 3 कि. मी. है। यहाँ चारदीवारी में एक मंदिर है, जिसमें 119 मूर्तियाँ हैं।

पचराई : यह खानियाधाना से 16 कि. मी. दूर है। 14 कि. मी. का मार्ग पक्का तथा 2 कि. मी. का मार्ग कच्चा है। यहाँ 28 जिनमंदिर हैं, जो एक परकोटे में हैं । मुख्य मंदिर भगवान शीतलनाथ का है। मूलनायक प्रतिमा लगभग पौने चार मीटर ऊँची है। यहाँ की मूर्तियों पर हीरों की पॉलिस की हुई है।

बजरंगगढ़ (अतिशय क्षेत्र): बीना–कोटा लाइन पर गुना रेल्वेस्टेशन है। यह वहाँ से आरोन जानेवाली सड़क पर 7 कि. मी. दूर है। यहाँ दो मंदिर हैं। प्रमुख मंदिर में मूलनायक प्रतिमा भगवान शांतिनाथ की है। यह 4.5 मी.(पीठासन सहित 5.5 मी.) ऊँची है। मूर्ति के एक ओर भगवान कुन्थुनाथ और दूसरी ओर भगवान अरनाथ की प्रतिमा है। यहाँ दीवारों पर चित्रकारी एवं मूर्तियाँ उकेरी गईं हैं। पौने दो मी. ऊँची एक मूर्ति भगवान बाहुबली की भी है।

पपौरा (अतिशय क्षेत्र): यह टीकमगढ़ से 5 कि. मी. दूरी पर है। टीकमगढ़ से यहाँ बस, तांगा द्वारा पहुंचा जा सकता है। सड़क से क्षेत्र 200 मी. है।

वृक्षावली से घिरे मैदान में एक परकोटे के अंदर पृथक गर्भग्रहों में बटे 107 मंदिर हैं। यदि गर्भग्रहों को पृथक मंदिर न माना जाय तो कुल 60 मंदिर होते हैं। ये मंदिर बारहवीं शताब्दी से लेकर बीसवीं शताब्दी तक के बताये जाते हैं। सभी मंदिर शिखरबंद हैं। यहाँ एक मंदिरों की चौबीसी बनी हुई है। एक बाहुबली का विशेष मंदिर है, जो कि अवश्य ही देखने योग्य है।

व्यवस्था – यहाँ चार धर्मशालाएँ हैं, जिनमें 125 कमरे तथा 5 हाल हैं। नल, कुये आदि की समुचित व्यवस्था है।

आचार्य कुन्दकुन्द और अष्टपाहुड

भगवान महावीर की परम्परा से बहती ज्ञान की अनवरत धारा में 'मंगलं कुन्दकुन्दाद्यो' के रूप में आचार्य कुन्दकुन्द का स्थान दिगम्बर आचार्य परम्परा में सर्वोच्चता से प्रतिष्ठित है। आपका जन्म 2000 वर्ष पूर्व विक्रम की प्रथम शताब्दी में कौण्डकुन्दपुर (कर्नाटक) में हुआ था। इसी कारण से इनका नाम कुन्दकुन्दाचार्य प्रसिद्ध हुआ।

आचार्य के अन्य नामों को प्रकाशित करनेवाला श्लोक इसप्रकार है –

आचार्य कुन्दकुन्दाख्यो वक्रग्रीवो महामुनि:।
एलाचार्यो गृद्धपृच्छ इति तन्नाम पंचधा।।

चारणऋद्धि केधारी आचार्य के विदेह –गमन व साक्षात् सीमंधर भगवान की दिव्यध्वनि से दिव्यज्ञान प्राप्त करने के अनेक प्रमाण मिलते हैं।

दिगम्बर परम्परा में शिरमोर होने के नाते इनके समक्ष दो उत्तरदायित्व थे। 1. द्वितीय श्रुतस्कंधरूप परमागम को लिपिबद्ध करना। 2. शिथिलाचार के विरूद्ध सशक्त आन्दोलन चलाना। दोनों उत्तरदायित्वों का इन्होनें पूर्ण पालन किया। प्रथम श्रुतस्कंध की रचना पुष्पदन्त व भूतबली द्वारा हुई तथा द्वितीय श्रुतस्कंध की रचना आचार्य कुन्दकुन्द ने की।

आचार्य कुन्दकुन्द के पाँचो परमागमों में से502 गाथाओं के इस अष्टपाहुड ग्रन्थ में शिथिलाचार के विरूद्ध आवाज उठाई है, जो पंचमकाल के अंत तक बढ़ने वाले शिथिलाचारों का दमन करती रहेगी।

इसमें आठ अधिकार हैं, जिनके नाम व विषयवस्तु अधोलिखित हैं :

1. दर्शनपाहुड : 36 गाथाओं में निबद्ध सम्यग्दर्शन की महिमा का वर्णन करने वाला है। प्रमुख विन्दु : 1. जो सम्यग्दर्शन से भ्रष्ट हैं, उन्हें निर्वाण की प्राप्ति नहीं होती तथा 2. जो शक्य हो वह करो एवं जो शक्य न हो उसका श्रद्धान तो करो ही।

2. सूत्रपाहुड : 27 गाथाओं में निबद्ध, इसमें जिनागम को सूत्र कहकर उस मार्ग पर चलने की प्रेरणा श्रमणों को दी है तथा साथ ही धर्म की दृष्टि से तीन लिंगों को पूज्य बताया :1. नग्नदिगम्बर साधु, 2. उत्कृष्ट श्रावक एवं 3. आर्यिकायें।

3. चारित्रपाहुड : 45 गाथाओं में निबद्ध, इसमें कहा है कि ज्ञान–दर्शन शुद्ध सम्क्त्वाचरण है और शुद्ध आचरणरूप चारित्र संयमाचरण है। इसमें रत्नत्रय सहित निर्मल चारित्र धारण करने की प्रेरणा दी है।

4. बोधपाहुड : 62 गाथाओं में निवद्ध, इसमें दिगम्बर धर्म और निर्ग्रन्थ साधु का स्वरूप बताया है।

5. भावपाहुड : 165 गाथाओं में निबद्ध, इसमें भावशुद्धि पर विशेष बल देकर, भावलिंग सहित द्रव्यलिंग धारण करने की प्रेरणा व प्रकारान्तर से सम्यग्दर्शन सहित व्रत धारण करने का उपदेश दिया है।

6. मोक्षपाहुड : 106 गाथाओं में निबद्ध, इसमें अनन्तसुखस्वरूप मोक्षदशा एवं उसकी प्राप्ति के उपायों का निरूपण किया गया है।

7. लिंगपाहुड : 22 गाथाओं में जिनलिंग का स्वरूप स्पष्ट कर, जिनलिंग धारण करने वालों को अपने आचरण और भावों की संभाल के प्रति सतर्क किया है।

8. शीलपाहुड : वास्तव में रत्नत्रय ही शील है, वही मोक्षमार्ग है।

इसप्रकार सम्पूर्ण अष्टपाहुड में शिथिलाचार केविरूद्ध सशक्त उपदेश एवं सम्यग्दर्शन पर सर्वाधिक बल दिया है। **– चिन्मय शास्त्री, गुढ़ाचंदजी**

समयसार का सार 62

गतांक से आगे

– डॉ॰ हुकमचन्द भारिल्ल

परमाणुमित्तयं पि हु रागादीणं तु विज्जदे जस्स।
ण वि सो जाणदि अप्पाणयं तु सव्वागमधरो वि।।201।।
अप्पाणमयाणंतो अणप्पयं चावि सो अयाणंतो।
कह होदि सम्मदिट्ठी जीवाजीवे अयाणंतो।।202।।

जिन जीवों के परमाणु मात्र (लेशमात्र) भी रागादि वर्तते हैं, वे जीव समस्त आगम के पाठी होकर भी आत्मा को नहीं जानते। आत्मा को नहीं जाननेवाले वे लोग अनात्मा को भी नहीं जानते। इसप्रकार जो जीव और अजीव (आत्मा और अनात्मा) दोनों को ही नहीं जानते; वे सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकते हैं ?

यदि इन दो गाथाओं का सही अर्थ नहीं समझा जाय तो बहुत अनर्थ हो सकता है; अतः इन्हें सही रूप में समझना अत्यंत आवश्यक है।

करणानुयोग के शास्त्रों में यह कहा गया है कि राग दसवें गुणस्थान तक रहता है; जबकि सम्यग्दर्शन तो चतुर्थगुणस्थान में ही प्रगट हो जाता है; अतः यहाँ उक्त कथनों में परस्पर विरोध प्रतिभासित होता है; परन्तु वस्तुतः विरोध नहीं है; क्योंकि यहाँ 'परमाणु मात्र राग' का अर्थ राग की सत्ता ही नहीं है – ऐसा नहीं है; अपितु 'राग धर्म है, राग मैं हूँ, राग मेरा है, राग की क्रिया का कर्त्ता–भोक्ता मैं हूँ, राग सुखस्वरूप है, राग करने से मुझे सुख की प्राप्ति होगी' – ऐसी मान्यता का नाम 'परमाणुमात्र राग' है।

यह अपने मन से निकाला हुआ अर्थ नहीं है; अपितु इसी गाथा में लिखा है कि 'सव्वागमधरोवि' अर्थात् जो सर्व आगम को जानता है; परंतु फिर भी वह सम्यग्दृष्टि नहीं है। शास्त्रों में यह आता है कि मिथ्यादृष्टि सर्व आगम को जान ही नहीं सकता है, वह द्वादशांग का पाठी नहीं हो सकता है, श्रुतकेवली भी नहीं हो सकता। ऐसी स्थिति में 'सर्व आगम को जाने का अधिक से अधिक ग्यारह अंग और नौ पूर्व को जाने – ऐसा अर्थ है। यही अर्थ आचार्य अमृतचन्द्र ने एवं आचार्य जयसेन ने किया है।

ऐसा जीव आत्मा को नहीं जानता है अर्थात् उसे आत्मा का अनुभव नहीं है। शास्त्रों से पढ़कर, गुरु के मुख से सुनकर, भले ही उसने आत्मा को जाना होगा; लेकिन उसे आत्मा का अनुभव नहीं है। जिसे आत्मा का अनुभव नहीं है, वह अनात्मा को भी नहीं जानता है। अनात्मा को नहीं जानता है अर्थात् 'यह आत्मा नहीं है' – ऐसा ज्ञान उसे नहीं है; क्योंकि जब आत्मा का ही ज्ञान नहीं है तब यह आत्मा नहीं है – यह ज्ञान कैसे हो सकता है।

जिसे नींबू की पहचान नहीं है, उसे संतरा दिखाया जाय तो वह ऐसा नहीं कह सकता है कि यह 'नींबू नहीं है' क्योंकि न उसे सही प्रकार से नींबू की पहचान है और न ही संतरे की।

ऐसे ही जो आत्मा को नहीं जानता है, वह किसी वस्तु को देखकर 'यह आत्मा नहीं है' – ऐसा भी नहीं कह सकता; इसप्रकार जो आत्मा को नहीं जानता है, वह अनात्मा को भी नहीं जानता है।

जो ऐसा कहते हैं कि अनादिकाल से इस आत्मा ने पर को ही जाना है, स्वयं को नहीं जाना है; इसमें कुछ दम नहीं है; क्योंकि इस जीव को न आत्मा का ही सही ज्ञान है और न ही पर का। इसका अर्थ यह नहीं है कि पर जानने में ही नहीं आता है; अपितु उसका सच्चा स्वरूप जानने में नहीं आता – यह है। यहाँ मात्र जानने का नाम जानना नहीं है; अपितु वस्तु का सत्यार्थ स्वरूप जानने का नाम वास्तविक जानना है। जब अज्ञानी जीव स्व–पर को जानता नहीं; ऐसा कथन हो; तब वहाँ वह उन्हें वस्तुस्वरूप के अनुरूप नहीं जानता है – ऐसा समझना।

एक व्यक्ति अशिक्षित था; किन्तु उसने मात्र हस्ताक्षर करना सीख लिया। पहले तो उसे अंगूठा लगाना पड़ता था। अंगूठा लगाने से सभी यह जान जाते थे कि इसे पढ़ना–लिखना नहीं आता है। अब हस्ताक्षर कर देता है और ऐसा मानता है कि सभी ने मुझे 'मैं पढ़ा–लिखा हूँ' – ऐसा जान लिया है। वह पढ़ा– लिखा तो है नहीं; परंतु सभी ने उसे 'यह पढ़ा–लिखा है' – ऐसा जान लिया।

किसी ने उससे पूछा कि 'तुम किस कक्षा तक पढ़े–लिखे हो ?' तब वह उत्तर देता है 'हम मौत पढ़े हैं।' इसका अर्थ यह है कि वह बिना पढ़े ही हस्ताक्षर कर देता है। बिना जाने किसी भी कागज पर हस्ताक्षर कर देना खतरे से खाली नहीं है; इसलिए वह कहता है कि हम अपनी मौत पढ़े हैं।

ऐसे ही अज्ञानी जीव भी अपनी मौत पढ़े हैं, वे शास्त्र भी पढ़े हैं तो अपनी मौत पढ़े हैं; क्योंकि शास्त्र का सच्चा मर्म तो उनके ख्याल में आता नहीं है और हमने बहुत शास्त्र पढ़ लिए, हमने सब जान लिया – ऐसा अभिमान हो गया है।

मैंने एक पण्डितजी से पूछा – 'पण्डितजी आपने मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा है।'

वे कहते हैं – 'हमने सब पढ़ लिया है।'

तब मैंने कहा – 'आपने सब पढ़ लिया है ये तो ठीक है; लेकिन क्या आपने मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रंथ भी पढ़ा है ?'

उनका एक ही उत्तर है कि 'हमने सैंकड़ो ग्रंथ पढ़े हैं।'

वह 'मैंने मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ा या नहीं पढ़ा है' – साफ–साफ नहीं कहना चाहता है; क्योंकि नहीं पढ़ा कहने पर अपमान हो जाएगा और पढ़ा कहने पर पूछा जा सकता है कि

आठवें अध्याय में क्या कहा गया है ? इनसे बचने के लिए वह कहता है कि 'मैंने बहुत ग्रंथ पढ़े हैं, सैंकड़ो ग्रंथ पढ़े हैं, मेरी जिंदगी पढ़ने–पढ़ने में ही बीती है, मैंने पढ़ने के अतिरिक्त कुछ किया ही नहीं है।'

सीधा सरल जवाब दे तो वह पण्डित कैसा ? आज सबसे बड़ा पण्डित तो वही माना जाता है; जिसका कथन किसी के समझ में ही नहीं आए।

समयसार पढ़ने का अर्थ समयसार की गाथा पढ़ने से नहीं है। जबतक समयसार का मर्म ख्याल में नहीं आता है, तबतक उसे पढ़ना वास्तविक पढ़ना नहीं है।

ऐसे ही परमाणुमात्र भी राग जिसके विद्यमान है, वह आत्मा को नहीं जानता है, भले ही उसने सभी शास्त्रों को पढ़ा हो। इसका अर्थ यह है कि जो राग में उपादेयबुद्धि रखता है, जिसने 11 अंग और 9 पूर्व पढ़े हैं; ऐसा व्यक्ति शास्त्रों में आत्मा को पढ़कर भी उस आत्मा के वास्तविक स्वरूप को नहीं जानता है। जो आत्मा के स्वरूप को नहीं जानता है, वह अनात्मा के स्वरूप को भी नहीं जानता है। जो आत्मा और अनात्मा को नहीं जानता है वह सम्यग्दृष्टि कैसे हो सकता है ?

इसी प्रकरण में आचार्य कह रहे हैं कि अपने को सम्यग्दृष्टि मानकर फुलाये हैं गाल जिसने एवं उठाई है गर्दन जिसने – ऐसा अभिमानी मुद्रा वाला कोई मानता है कि सम्यग्दृष्टि को तो बंध नहीं होता है अतः खूब भोग भोगे; जितने अधिक भोग भोगे उतनी ही अधिक निर्जरा होगी।

ऐसा व्यक्ति कहता है कि हम क्या करें ? आप ही कहते हो कि सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा के हेतु हैं। और यदि हम ऐसा मानते हैं तो आप इसे गलती कहते हो; आप वही बात कहो तो सत्य है और हम वही बात कहें तो झूठ है – ऐसा क्यों ?

एक करोड़पति सेठ है, वह यदि कहे कि मैंने एक लाख रुपए दान में दिए; लिख लो मेरा एक लाख। दूसरी ओर जिसे कल के खाने की चिंता है, 500 रु॰ प्रतिमाह पर नौकरी करता है; वह कहे कि मेरा सवा लाख लिख लो !

क्या यह सुनकर दान लेनेवाला लिख लेगा ? क्या लिखना चाहिए ? तब वह व्यक्ति कहता है कि जब उन्होंने एक लाख लिखाए हैं, वैसे ही मैं भी सवा लाख लिखा रहा हूँ; यदि उससे पूछा जाय कि आप सवा लाख रुपए कब देंगे ?

तब वह कहता है कि यहाँ देने की बात ही कहाँ है, लिखाने की बात है ? आपने कहा लिखाना हो तो लिखा दें; इसलिए मैंने लिखाया है।

अब यदि उससे पूछते हैं कि आप देंगे कब ?

तब वह उत्तर देता है कि जब होंगे तब !

कब देंगे, इस भव में या अगले भव में ?

वह कहता है जब होंगे तब ! दोनों एक ही बात कह रहे हैं; लेकिन संपूर्ण जगत एक की बात को मानता और दूसरे की बात को नहीं मानता है।

ऐसे ही जो आत्मा का स्वरूप जानते हैं, राग का स्वरूप जानते हैं, राग में जिनकी सुखबुद्धि नहीं है, भोगों में जिनकी सुखबुद्धि नहीं है – ऐसा जीव भोग भोगे तो भी निर्जरा है। एवं जिनके भोगों में सुखबुद्धि है, वे भोग नहीं भोगे तो भी उनके आस्रव है, निर्जरा नहीं है।

हे भाई ! सम्यग्दृष्टि के भोग निर्जरा हेतु हैं, इस महान सिद्धान्त से तुमने भोगों की पुष्टि की। यह तो समयसार का दुरुपयोग है।

यह तो ऐसा ही हुआ जैसे दो भाई लड़ रहे थे, उनसे पूछा गया कि भाई आप क्यों लड़ रहे हो ? तब वे कहते हैं कि भरत और बाहुबली भी तो आपस में लड़े थे ! इसमें नया क्या है ? यह तो अनादि की परम्परा है। देखो, इसने आदिपुराण से लड़ाई का पोषण किया।

परंतु उनसे हम पूछते हैं कि इसके बाद क्या हुआ था; यह पढ़ा कि नहीं पढ़ा ? फिर बाहुबली ने दीक्षा ली थी। आप में से ऐसा कौन भाई है जो दीक्षा लेनेवाला है। तब वे कहते हैं कि हमने तो यहीं तक पढ़ा था कि वे लड़े थे, बस !

अरे भाई ! ऐसी अधूरी पढ़ाई से काम चलनेवाला नहीं है।

एक सभागार में भारतेन्दु हरिश्चन्द्र द्वारा लिखित 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक खेला जा रहा था। जब सभी लोग वहाँ से नाटक देखकर बाहर निकले तो पत्रकार जनता से राय लेने के लिए पहुँचे।

जनता को नाटक कैसा लगा ? यह जानने के लिए एक पत्रकार एक व्यक्ति के पास पहुँचा। वह पगड़ीधारी व्यापारी अभी–अभी नाटक देखकर बाहर निकला था।

उससे पत्रकार ने पूछा कि आपको नाटक कैसा लगा ?

तब उसने उत्तर दिया कि 'बहुत अच्छा !'

पत्रकार ने उस व्यक्ति से दूसरा प्रश्न किया – 'आपने इस नाटक से क्या शिक्षा ग्रहण की।'

तब उस व्यक्ति ने तुरंत उत्तर दिया – 'भाया ! सत्य बोलवां में कांई माल नथी।' हरिश्चन्द्र के समान राजा से रंक बनना हो तो सत्य बोले; पत्नी बेचना हो, बेटा बेचना हो, भंगी के यहाँ नौकरी करना हो तो सत्य बोले। यही मैंने इस नाटक से सीखा।

क्या इसी भावना से भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने 'सत्य हरिश्चन्द्र' नाटक लिखा होगा। उन्होंने तो ऐसी कल्पना भी नहीं की होगी कि कोई व्यक्ति इस नाटक से ऐसी भी शिक्षा ग्रहण कर सकता है। ऐसे ही भगवान महावीर से लेकर चौथे गुणस्थानवर्ती ज्ञानी धर्मात्मा जीवों ने जब ये कहा होगा कि ज्ञानवंत के भोग निर्जरा हेतु हैं; तब उन्होंने ऐसी कल्पना भी नहीं की होगी कि कुछ लोग ऐसा भी सोच सकते हैं कि यदि भोग निर्जरा के हेतु हैं, तो खूब डटकर भोगे; जितना भोगेंगे उतनी ही निर्जरा होगी। **(क्रमशः)**

रजिस्ट्रेशन आर. एन. आई. 31109/77

महाविद्यालय की क्रीड़ा प्रतियोगितायें सम्पन्न

श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय में छात्रों के सर्वांगीण विकास की दृष्टि से अध्ययन के साथ-साथ शिक्षणेतर गतिविधियों का आयोजन भी किया जाता है। इस क्रम में 24 दिसम्बर से 31 दिसम्बर तक महाविद्यालय की क्रीड़ा प्रतियोगिता सानन्द सम्पन्न हुई। इनमें क्रिकेट, कैरम, शतरंज, वैडमिन्टन व वॉलीबाल की प्रतियोगिताएँ आयोजित की गयीं। साथ ही महाविद्यालय की साहित्यिक प्रतियोगिताओं का आयोजन 24 जनवरी से 29 जनवरी तक किया गया।

सम्पूर्ण प्रतियोगिताएँ महाविद्यालय के अधीक्षक पण्डित शांतिकुमारजी पाटील के निर्देशन में शास्त्री तृतीय वर्ष के छात्रों द्वारा आयोजित करायी गयीं। **– ऋषिराज बरा**

रविवारीय गोष्ठी सानन्द सम्पन्न

जयपुर : 1. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्रांगण में रविवार, दिनांक 12 जनवरी 03 को 'परीक्षामुख : एक परिशीलन' विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता संस्कृत महाविद्यालय के प्राध्यापक श्री निर्मलकुमारजी बोहरा ने की।

अन्त में श्रेष्ठ वक्ता के रूप में प्रथम पुरस्कार प्रमेश जैन जवेरा को एवं द्वितीय पुरस्कार रमेश शिरहड़ी को दिया गया। संचालन पुलकित जैन कोटा ने एवं संयोजन श्रेयांस जैन अभाना ने किया।

2. श्री टोडरमल दि. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय के प्रांगण में रविवार, दिनांक 19 जनवरी 03 को 'ग्रन्थ एवं ग्रन्थकार का परिचय' विषय पर एक गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता महाविद्यालय के भूतपूर्व छात्र पण्डित भागचंदजी शास्त्री ने की।

अंत में श्रेष्ठ वक्ता के रूप में एलमचंद जैन एवं मयंक जैन को पुरस्कृत किया गया। संचालन राजीव जैन गुना ने एवं संयोजन मनोज जैन अभाना ने किया। **मनोज जैन, अभाना**

सिद्धचक्र मण्डल विधान सानन्द सम्पन्न

कानपुर (उ.प्र.): श्री 1008 शांतिनाथ दिगम्बर जैनमंदिर में श्री आलोककुमारजी जैन परिवार द्वारा श्री सिद्धचक्र महामंडल विधान का आयोजन किया गया, जिसमें डॉ. उत्तमचंदजी जैन सिवनी के दोनों समय समयसार गाथा 1 से 11 पर मार्मिक प्रवचन हुये। इसके अतिरिक्त पण्डित संजयकुमारजी शास्त्री जेवर एवं स्थानीय विद्वान पण्डित अनुभवप्रकाशजी शास्त्री के प्रवचनों का लाभ भी समाज को मिला।

विधान के अवसर पर ब्र. जतीशचंदजी शास्त्री ने युवा समाज को जीवरक्षा, परोपकार की भावना सहित धर्मकार्यों में सतत् जाग्रत एवं समर्पित रहने का आह्वान किया।

इसी अवसर पर श्री बसन्तभाई दोशी मुम्बई, ब्र. धन्यकुमारजी बेलोकर गजपंथा एवं श्री अमृतभाई मेहता ने पधारकर तीर्थसुरक्षा की ओर सभी का ध्यान इंगित किया। **– सन्तोष जैन**

छत्तीसगढ़-रायपुर में एक सराहनीय प्रयास

छत्तीसगढ़ प्रान्त की राजधानी रायपुर में गत दिनांक 28 दिसम्बर, 02 से 5 जनवरी, 03 तक आयोजित राष्ट्रीय पुस्तक मेले में अखिल भारतीय जैन युवा फैडरेशन महाकौशल प्रान्त के प्रदेशाध्यक्ष श्री अशोक जैन की पहल और उनके नेतृत्व में जैन साहित्य का स्टाल भी लगाया गया। पूरे छत्तीसगढ़ के अंचल में जैन साहित्य के इसप्रकार से सार्वजनिक विक्रय प्रदर्शन का यह प्रथम प्रयास सभी के द्वारा खूब सराहा गया। जैन-जैनेतर समुदाय के अनेक लोगों ने जैनदर्शन की स्टाल का अवलोकन करके लाभ उठाया। पुस्तक मेले के लिए पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा सत्साहित्य उपलब्ध कराया गया था।

'चैतन्यधाम' का भूमि पूजन महोत्सव सम्पन्न

हिम्मतनगर : पूज्यश्री कुन्द-कुन्द कहान धर्मरत्न पण्डितश्री बाबूभाई मेहता दिगम्बर जैन सत्समागम पब्लिक चेरिटेबल ट्रस्ट द्वारा हिम्मतनगर (गुजरात) हाईवे पर नवनिर्मित 'चैतन्यधाम' का भूमिशुद्धि तथा शांतिविधान का मंगल महोत्सव कार्तिक वद सोमवार दिनांक 25 नवम्बर 2002 को अति उल्लास तथा आनन्दमय वातावरण में सम्पन्न हुआ।

सम्पूर्ण कार्यक्रम प्रतिष्ठाचार्य बालब्रह्मचारी जतीशचन्दजी शास्त्री एवं श्री अमृतभाई मेहता, फतेहपुर के कुशल निर्देशन में सम्पन्न कराये गये तथा भोगीलाल गांधी, राजूभाई शाह, प्रतीकभाई शाह एवं कमलेशभाई कोटड़िया का सहयोग भी उल्लेखनीय रहा।

इस प्रसंग पर पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर तथा अन्य अनेक विद्वानों के प्रवचनों का लाभ उपस्थित मुमुक्षु बन्धुओं को प्राप्त हुआ। **ह्न राजू शाह**

जैनपथप्रदर्शक (पाक्षिक) फरवरी (प्रथम) 2003
J.P.C. 3779/**02/2003-05**

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा जयपुर**, एम.ए. (जैनविद्या एवं तुलनात्मक धर्मदर्शन)
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो कृपया निम्न पते पर भेजें –
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
तार : त्रिमूर्ति, जयपुर **फैक्स :** 2704127